तृतीयावृत्ति

१९९४

मूल्य

॥)

श्रीरामकिशोर गुप्त द्वारा
साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित।

बक-संहार

श्रीगणेशायनमः

वक-संहार

[१]

सञ्चित किये रक्खे हुए,
शुक-वृन्द के चक्खे हुए,
कुछ फल कि जो थे दीन शवरी के दिये;
खाकर जिन्होंने प्रीति से,
शुभ मुक्ति दी भव-भीति से,
वे राम रक्षक हों धनुर्धारण किये।

[७]

आतिथ्य और अतिथि-कथा,
तेरा पुराना यह प्रथा,
प्राचीन भारत, आज भी सु नवान है।
अब अतिथि भिक्षुक मात्र हैं,
अधिकारा अथ अपात्र हैं,
भिक्षा बना व्यवसाय, तू भा दान है।

[८]

ह देश हाकर भा गया,
तू था न यों स्वाथ ग्रहा।
वह धर्म की ध्रुवता यहाँ तरा वता ?
अब मूल चाहे भूत है,
पर वह यहा हा पूत है।
इतिहास देवा है हमें उसका पता।

[४]

वह विप्र का परिवार था;
शुचि लिप्त घर का द्वार था;
पूजा प्रसूनाकीर्ण थी दृढ़ देहली।
आगत अतिथियों के लिए,
शीतल पवन सुरभित किये,
मानो प्रथम ही थी पड़ी पुष्पाञ्जली।

[५]

ऊपर लिखा ओङ्कार था,
फिर बद्ध वन्दनवार था;
शोभित वहाँ पर शान्त सन्ध्यालोक था।
भीतर अजिर चौकोर था;
दालान चारों ओर था;
सारांश एक गृहस्थ का वह ओक था।

[६]

द्विज वय विप्रों से रहित ,
वन निकट, शिशु सुत सहित ,
सानन्द सन्ध्योपासना था कर रहा।
परितृप्त गृह-सुख-भोग से ,
मन्त्र स्वरों के योग से ,
नाना भुवन की भावना था हर रहा।

[७]

था पास ही तुलसीघरा ,
जो वायु-शोधक था हरा ,
सुमुखी सुता थी दीप उस पर धर रही।
बस, ब्राह्मणी निश्चल खड़ी ,
मुकुलित किये आँखें बड़ी ,
कैसे कहें, किस भाव से थी भर रही।

[८]

थी शान्ति पूरे तौर से,
ध्वनि सुन पड़ी तब पौर से,—
"गृहनाथ है ? मैं अतिथि हूँ, सुत साथ हैं।"
झट ब्राह्मणी चौकी, चली,
कह कर मधुर वचनावली,—
"आओ, अहा! हम सब विशेष सनाथ हैं।"

[९]

सचमुच सनाथ हुए सभी,
ऐसे मनुज देखे कभी!
कुन्ती सहित पाण्डव अतिथि थे वे नये।
लाक्षाभवन के साथ ही,
आशा जला कुरुनाथ की,
इस एकचक्रा नगर में थे आगये।

[६]

द्विज वर्य विघ्नों से रहित,
वेदी निकट, शिशु सुत सहित,
सानन्द सन्ध्योपासना था कर रहा।
परितृप्त गृह-सुख-भोग से,
मन्त्र-स्वरों के योग से,
मानो भुवन की भावना था हर रहा।

[७]

था पास ही तुलसीधरा,
जो वायु-शोधक था हरा,
सुमुखी सुता थी दीप उस पर धर रही।
बस, ब्राह्मणी निश्चल रही,
मुकुलित किये आँखें वहीं,
कैसे कहें, किस भाव से थी भर रही।

[८]

थी शान्ति पूरे तौर से,
ध्वनि सुन पड़ी तब पौर से,—
"गृहनाथ है ? मैं अतिथि हूँ, सुत साथ है।"
झट ब्राह्मणी चौंकी, चली,
कह कर मधुर वचनावली,—
"आओ, अहा! हम सब विशेष सनाथ हैं।"

[९]

सचमुच सनाथ हुए सभी,
ऐसे मनुज देखे कभी!
कुन्ती सहित पाण्डव अतिथि थे वे सचे।
लाक्षाभवन के साथ ही,
आशा जला कुरुनाथ की,
इस एकचक्रा नगर में थे आ बचे।

[१०]

सबने उचित स्वागत किया,
सुख से उन्हें आश्रय दिया,
मृग-चर्म धारी ब्रह्मचारी पाण्डुसुत
थे शास्त्र अब भी सीखते,
माँ युक्त थे यों दीखते,—
प्रत्यक्ष माना पद्म सर थे, पूर्ति युत।

[११]

रुचिकर वहाँ का वास था,
आदेश भी था व्यास का,
इससे वहीं रहने लगे न प्रीति से।
भिक्षान्न ले आते स्वयं,
माँ को खिला खाते स्वयं,
फिर द्विज निपट अभ्यास करते रीति से।

[१२]

द्विज और भी हर्षित हुआ,
उन पर समाकर्षित हुआ;
शास्त्राब्धि मन्थन अमृत-हित होने लगा।
विष-विघ्न भी जाता कहाँ,
वक रूप में निकला वहाँ;
वह धैर्य विप्र-कुटुम्ब का खोने लगा।

[१३]

जिसमें न हो सबका निधन,
प्रति दिन पुरी से एक जन,
उपहार था उस दैत्य को जाता दिया।
अब विप्र की बारी पड़ी,
कैसी कठिन थी वह घड़ी,
भय-शोक से फटने लगा सबका हिया।

[१६]

निश्चिन्त हो घर-वार से,
बन कर विरत, संसार से,
सम्बन्ध अपना आप ही मैं तोड़ता।
फिर आत्म-चिन्तन-लीन हो,
दृढ़ योग-मुद्रासीन हो,
मैं यह विनश्वर देह यों ही छोड़ता।

[१७]

अब काम यह भी आयगी,
निज को सफल कर जायगी।
मैं आज जाऊँगा स्वयं वक के निकट।
तुम लोग शोक करो न यों;
मत हो अधीर डरो न यों;
जब प्राकृतिक है तब मरण कैसा विकट?

[२=]

उस मृत्यु के [illegible]
कोई बचा [illegible]
पति के लिए मरण [illegible]
मैं किन्तु यदि [illegible]
तुमको [illegible]
तो कौन-सा [illegible]

[[illegible]]

यदि तुम [illegible]
मेरा [illegible]
होकर अनाथा [illegible]
मैं रह [illegible]
क्या [illegible]
यह वत्स भी [illegible]

[२६]

मैं सुत सुता भी जन चुकी,
कुल-वर्धिनी हूँ बन चुकी।
मेरे बिना अब हानि क्या संसार की?
इस हेतु जाने दो मुझे,
यह पुण्य पाने दो मुझे,—
जिससे कि रक्षा हो सके परिवार की।

[२७]

मैं एक तुम में रत यथा,
तुम एक पत्नीव्रत तथा।
मैं जानती हूँ, तुम कहो न कहो इसे।
पर तुम पुरुष हो, धीर हो,
ज्ञानी, गुणी,
तुम सह सकोगे मैं न

[२८]

तव शील - सद्गुण - संयुता
कहने लगी यों द्विज-सुता,—
"हे तात ! हे माँ, तुम सुनो मेरी कही—
सूझी मुझे वह युक्ति है ;
जिससे सहज ही मुक्ति है ;
आनन्द - पूर्वक मैं बताती हूँ वही ।

[२९]

कल हो कि आज, कि हो अभी,
पर जानते हैं यह सभी,—
है दान की ही वस्तु कन्या लोक में ।
तो त्याग तुम मेरा करो,
आपत्ति यों अपनी हरो ।
मैं भी बनूँ कुल-कीर्ति-धन्या लोक में ।

[३२]

पर मैं मरूँ तो ग्लानि क्या,
सब तो बचेंगे हानि क्या?
इससे मुझे बलि आज होने दो न क्यों?
लघु लाभ का क्यों लोभ हो,
गुरु हानि का जो क्षोभ हो।
लघु हानि कर गुरु लाभ हो तो लो न क्यों?

[३३]

मैं त्याग के ही अर्थ हूँ,
बच भी रहूँ तो व्यर्थ हूँ।
फिर क्यों न मुझको आज ही तुम त्याग दो?
यह और आगे की सभी
मिट जायँ चिन्ताएँ अभी।
मैं माँगती हूँ, पुण्य का यह भाग दो।

[३४]

सन्तान वह जो तार दे,
कुल-भार आप उतार दे।
उसको सभी हैं चाहते इस भाव से।
निज-धर्म धारूँ क्या न मैं,
कुल को उबारूँ क्या न मैं?
तुम भी तरो यह विपदनद इस नाव से।"

[२५]

द्विजवर्य फिर कहने लगा,
[illegible] गाथ [illegible] हने लगा,—
[illegible] मोह में।
[illegible] तुम्हें

[३६]

पाणिग्रहण जिसका किया,
सब भार जिसका है लिया,
कैसे उसे मैं मृत्यु-मुख में छोड़ दूँ?
होमाग्नि सम्मुख विधिविहित,
जिसको किया निज में निहित,
सम्बन्ध उस सहधर्मिणी से तोड़ दूँ?

[३७]

ब्राह्मणि, सुनो, रोओ न यों,
धीरज धरो, खोओ न यों,
निज हित इसी में तुम भले ही मान लो।
जो आप बक की बलि बनो,
नव पुत्र-सा कुल-हित जनो।
पर धर्म मेरा क्या? इसे भी जान लो।

[३८]

हा ! और यह सुखपालिका,
मेरी विनीता बालिका,
निज मुख वृथा हा आँसुओं से धो रही।
यह आँख मेरी दूसरी,
हे द्विज पाँख मेरी दूसरी,
मेरे लिए है आप ही हत हो रही।

[३९]

पर, मुनि, इसमें सार क्या ?
तेरा यहाँ अधिकार क्या ?
तू हर सकता दूसरे घर की व्यथा।
अधिकार पालन मात्र का—
मुझको कि लालन मात्र का,
सचमुच पराई वस्तु है तू सर्वथा।

[४०]

जो है धरोहर मात्र ही,
लेगा जिसे सत्पात्र ही,
क्या दैत्य को दूँ मैं उसे उपहार में ?
तू ले रहा निश्वास है,
पर, क्या तुझे विश्वास है,
मैं पड़ सकूँगा इस अधम अविचार में ?

[४१]

जिसके लिए तू है वनी,
तेरा वनेगा जो धनी,
आज्ञा विना उसकी तुझे भी स्वत्व क्या ?
जो तू स्वयं कुछ कर सके,
मेरे लिए भी मर सके,
हा ! शान्त हो, इस वन-रुदन में तत्व क्या ?

[४७]

अबला सदा ही रक्ष्य है,
नर-नीति का यह लक्ष्य है।
कैसे न रक्खूँ फिर भला निज नीति में ?
ब्राह्मणि, तुम क्या भय यहाँ,
नव धर्म का है जय जहाँ,
पाता नहीं डर ठिए कुछ भीति में।

[४८]

माना कि अनघा नारियाँ,
होता सम्म मधुमारियाँ,
पर, वे भला सकता नहीं ससार क्या ?
करुणा मयी, ममता मयी,
सेवा - मयी, समता मयी,
वे कर नहीं सकती यहाँ उपकार क्या ?

[४४]

वहु कर्म - कुशला, गुणवती,
तू है कला - शीला, सती,
निर्वाह का क्या सोच सालेगा तुझे ?
करके उचित परिचालना,
इस पुत्र को तू पालना;
होकर युवक यह आप पालेगा तुझे।"

[४५]

बैठी बहन के स्कन्ध पर,
रक्खे हुए निज वाम कर,
कुल-दीप-सा बालक खड़ा था स्थिर वहाँ।
पाकर समय उसने कहा,
थी तोतली वाणी अहा!
"माल्डूँ अचुल फो रैं अभी, वह है कहाँ ?"

[४६]

था शोक का छाइ घटा,
उसमें उठी विद्युच्छटा।
रोते हँसे, हँसते हुए रोय सभी।
तब ब्राह्मण न सिर धुना,
वह शब्द कुन्ती ने सुना।
वह वायु गति से आप आ पहुँची तभी।

[४७]

"यह शोक कैसा है अरे।
तुम लोग क्या आँसू भरे?
आपत्ति क्या तुम पर अचानक आ पड़ी।
क्या भय उपस्थित है वन्धे,
आत्माय हूँ मैं भी अहा।
जो कर सकूँ, तैयार हूँ मैं हर घड़ी।"

[४८]

तब विप्र ने वक की कथा,
अपनी तथा सबकी व्यथा,
उसको सुनाई दुःख से, निर्वेद से।
सारी अवस्था जान कर,
अति दुःख मन में मान कर,
कहने लगी कुन्ती वचन यों खेद से,—

[४९]

"हा! देश यह असहाय है,
मरता, न करता हाय है!
मुझसे कहो, राजा यहाँ का कौन है?
कुछ यत्न वह करता नहीं,
कर्त्तव्य से डरता नहीं?
मरती प्रजा है और रहता मौन है।

[५]

यदि भार वह दुर्बलमना,
तो व्यर्थ क्यों राना बना?
पर ॰ ॰ हो तुम ॰से किस बात का
॰ा प्रजा ॰ अर्थ है,
यदि ॰ अपटु, असमर्थ है,
कारण ॰ी है तो स्वय ॰पात का।

[६]

सन॰ सदृश ॰स भूप का,
॰स पाप ॰ प्रतिरूप ॰
वध ॰ लिए वारी कभी प॰ा ॰?
जूझ कि निज पद त्याग ॰,
सबके सदृश बलि भाग ॰,
न्यायार्थ क्यों उससे प्रजा लड़ती न॰?

[५६]

सबको विपद में छोड़ कर,
किस धर्म-धन को जोड़ कर,
भद्रे, यहाँ से भाग जाता हाय! मैं?
सबकी दशा जो हो यहाँ,
मैं भागता उससे कहाँ?
निज हेतु क्या सब पर करूँ अन्याय मैं?

[५७]

जाकर रहे कोई कहीं,
यह देह रहने की नहीं:
आत्मा परन्तु कभी कहीं मरता नहीं।
जो कर्म तत्प्रतिकूल है,
करना उसे फिर भूल है।
धर्म के प्रतिकूल कुछ करता नहीं।

[५४]

तो हाँ, कहो हे भूमिसुर,
तुम छोड़ कर यह पापपुर,
अन्यत्र हो न चले गये कुल-युक्त क्यों ?
पृथ्वी प्रचुर है, पार क्या ?
ऐसा यहाँ था सार क्या ?
जाते कहीं होते न तो वध-मुक्त यों।"

[५५]

द्विज ने कहा—(कुन्ती रुकी)
"जो बात निश्चित हो चुकी,
फिर भाँति मैं उससे भला मुहँ मोड़ता ?
अच्छा बुरा जैसा सही,
वध-सद्म समझौता यही,
सबने किया है, किस तरह मैं तोड़ता ?

[५६]

सबको विपद में छोड़ कर,
किस धर्म-धन को जोड़ कर,
भद्रे, यहाँ से भाग जाता हाय! मैं?
सबकी दशा जो हो यहाँ,
मै भागता उससे कहाँ?
निज हेतु क्या सब पर करूँ अन्याय मैं?

[५७]

जाकर रहे कोई कहीं,
यह देह रहने की नहीं;
आत्मा परन्तु कभी कहीं मरता नहीं।
जो कर्म तत्प्रतिकूल है,
करना उसे फिर भूल है।
धर्म के प्रतिकूल कुछ करता नहीं।

[५८]

मैं भाग सकता था यथा,
सब भाग सकते थे तथा,
रहता व्यवस्था का कहाँ से फिर यहाँ?
इस मृत्यु में फिर भी नियम—
है और सत्वर हेतु मम,
पर अव्यवस्थित त्राण पा सकते कहाँ?

[५९]

राजा विवश है क्या करे,
यदि वह लड़े भी तो मरे।
बल है विपुल बक का, प्रजा लाचार है।
उद्योग रत सब लोग हैं,
पर क्या सहज शुभ योग है?
यों एक के सिर नित्य सबका भार है।

[६०]

जन एक देता प्राण है,
होता सभी का त्राण है;
सबके लिए निज नाश करना भी भला।
फिर किस तरह मैं भागता,
निज जन्मभू को त्यागता?
दस भाइयों के साथ मरना भी भला।"

[६१]

"पर मरण क्या उसका भला,—
तुष-तुल्य जो धीरे जला?
उसकी अपेक्षा भभक जाना ठीक है।
है तेज तो उसमें तनिक,
चकचौंध होती है क्षणिक।
हा! एक ही सबकी तुम्हारी लीक है!

[६]

द्विन रचना म क्या कहूँ,
पर मान भी हम रह?
• निज ररभ्र का भ ड्रार व्यर्थ है।
क्या न्म । ा । सा,
ि मृ तुम नेन नार ना,
विस्ताए नमग भर मार जय है।

[६२]

पर शक्ति हम में चाहिए,
अनुरक्ति हम में चाहिए,
निर्बल जना का विश्व में काइ नहा।
कुन्ती सिहर कर चुप हुई,
(घहरी घटा फिर घुप हुई)
भर नेत्र आये किन्तु वह रोई नहीं।

[६४]

धर धैर्य फिर कहने लगी,
वाणी परम प्रियता-पगी,—
"कुछ हो, सभी निश्चिन्त तुम वक से रहो।
बस है तुम्हारे एक सुत,
पर, पाँच है मेरे अयुत;।
दूँगी तुम्हे मै एक उनमे से अहो!"

[६५]

इस वार दो आँसू चुए,
सब लोग विस्मित-से हुए;
द्विज ने कहा—"यह क्या अरे! यह क्या शुभे!
तुम अतिथि, मुझको मान्य हो,
तेजोनिधान, वदान्य हो;
माना तुम्हे, कण्टक हमारे हैं चुभे।

[६६]

पर धर्म क्या मेरा यही,
सह क्या इसे लेगी मही?
आश्रय दिया था क्या तुम्हें बलि के लिए
मुझको, न तुमको भी सुनो,
यह उचित है, समझो गुनो।
सम्भव नहीं यह क्षति स्वयं कलि के लिए

[६७]

"हे विप्र"—कुन्ती ने कहा,
"यह भूमि है सर्वसहा।
कलि और कृत युग हैं यहाँ देखो जभी।
मिल कर सदैव बुरा-भला,
संसार जाता है चला।
होवे बुरे न भले सभी जन हैं कभी।

[६८]

निज धर्म तुम हो जानते;
हमको बहुत कुछ मानते;
निज धर्म मैं भी जानती हूँ फिर कहो,
जिसने हमें आश्रय दिया,
सन्तुष्ट सब विध है किया,
उपकार उसका आज क्या हमसे न हो?"

[६९]

"उपकार"—द्विज बोला वहाँ—
"क्या प्राण देकर भी?—नहीं,
जो प्राण से भी प्रिय अधिक है सृष्टि में,
वह पुत्र बलि देकर? हरे!
क्या कह रही हो तुम अरे!
यह तेज कैसा है तुम्हारी दृष्टि में?

[७]

देवी, कहो तुम कौन हो,
क्या मूर्ति बन कर मौन हो?
दृढ़ता नहीं देखी कहीं ऐसी कभी।
अच्छा रहो, यह तो सुनो,
तुम कौन सुख दोगी? चुनो,
होगा वथा कैसे, सुनूँ यह तो अभी?"

[७१]

"हे विप्रवर, पूछो न यह।"
कुन्ती सकी आगे न कह।
द्विज-पुत्र घुटनों में लिपट कर था खड़ा।
उसको उठा कर गोद में,
मुँह चूम करुणाऽमाद में,
बोली कि—"मेरे वत्स, तू बन जा बड़ा।"

[७२]

माँ-बेटियाँ अब रो उठीं,
आकुल अधीरा हो उठीं;
कहने लगी सविषाद विप्र कुटुम्बिनी,—
"यह शिशु तुम्हारा ही रहे,
शत बार तुमको माँ कहे।
हो रक्षिका इसकी तुम्हीं, मुख-चुम्बिनी।

[७३]

द्विजबालिका फिर कह उठी,
घृत-पुत्तली गल बह उठी,—
"पर-हेतु आर्ये, तुम विपद में क्यों पड़ो?"
"बेटी, बड़ा सुख है यही।"
यह बात कुन्ती ने कही—
"तुम भी सदा पर-संकटों से यों लड़ो।

[७६]

उसने कहा-"हे त्यागिनी,
हे सर्वथा शुभ भागिनी,
उपकार भी सहनीय होना चाहिए।
मैं आज इससे दब रहा,
फिर जाय यह क्यों कर सहा,
हाँ, भार भी वहनीय होना चाहिए।

[७७]

सब सुत तुम्हारे धन्य हैं;
गुण-रूप-शील अनन्य हैं;
बल-वीर्य, विद्या-बुद्धि से वे हैं भरे।
वे पाँच पंच बने रहें;
क्यों व्यर्थ यह बाधा सहें;
उनको बहुत-से कार्य करने हैं हरे!"

[७८]

"तो एक यह भा कार्य है,
यह भी उन्हें अनिवार्य है,
आशीष दो कर लें इसे भी सिद्ध व।
या तो असुर को मार कर,
हा धन्य पुर-उपकार कर,
या कीर्ति लें कर सूर्य मण्डल विद्ध वे।

[७९]

यह कौन ऐसा भार है,
जिसका विशेष विचार है?
यह है हमारी अल्पमात्र कृतज्ञता।
कैसे न फिर यह व्यक्त हो,
तुम विप्रवर, न विरक्त हो,
कर जाँय क्या हम जानकर भी अज्ञता?"

[८०]

यों प्रश्न-पूर्वक निज कथा
निःशेष कर मानो वृथा;
कुन्ती विना उत्तर लिए निर्गत हुई।
ठहरी न वह, न ठहर सकी,
अति कार्य कर मानो थकी;
बाहर अटल थी किन्तु भीतर हत हुई।

[८१]

आ शीघ्र अपने स्थान पर,
सिर रख स्वभुज-उपधान पर,
वह लेट कर कहने लगी यों आप ही—
"हे प्राण, तुम पापाण हो,
अब आप अपने त्राण हो,
हा ! दैव मेरे व्यर्थ है सन्ताप ही।

[८१]

केवल कहा ही है अभी,
अवशिष्ट है करना सभी,
पर मन, अभी से तू विकल होने लगा।
ऐसे चलेगा काम क्या,
तेरा रहेगा नाम क्या?
आरम्भ में ही हाय ! तू रोने लगा।

[८२]

स्वामी गये शिशु छोड कर,
राजत्व उनका जोड कर,
यह भी गया, अब हाय ! क्या सुत भी चले ?
प्रभु, क्यों मुझे इतना दिया,
जो फिर सभी लौटा लिया,
छल कर मुझे क्यों आप अपने से छले ?

[८४]

जिनके यहाँ दो दिन रही,
उपकार जिनका है यही,
मरने न जाने दे रही हूँ मै उन्हे।
फिर वक-निकट चिरभक्ति-मय,
जाने मुझे देंगे तनय—
जो गर्भ से ही से रही हूँ मैं उन्हें?

[८५]

भगवान, मैं ही किस तरह;
जाने उन्हें दूँ इस तरह;
क्या मारने को ही उन्हें मैंने जना?
प्रभुवर, परीक्षा लो न यों;
तुम वक-निर्दय हो न यों;
अबला सदा दयनीय हूँ मैं मृदुमना।

[८६]

तुम किन्तु निश्चय कर यही,
यदि हो रह हो आग्रही,
स्वाकार है तो मैं नियूँ चाह मरूँ।
ले लो प्रभो, सब जो दिया,
मैंने हृदय दृढ़ कर लिया,
पर यह बता दो क्या करूँ मैं, क्या करूँ ?"

[८७]

कर्त्तव्य कुन्ती कर चुकी,
वह विप्र-विपदा हर चुकी,
वात्सल्य वश अब हो उठी निचलित वही।
जो थी शिला-सी निश्चला,
अब रुँध गया उसका गला,
वह देर तक जल-मग्न सी लेटी रही।

[८८]

वह लीन थी भगवन्त में,
हलका हुआ जी अन्त में;
हाँ, बढ़ गई अत्यन्त ही गम्भीरता।
जब वीर पुत्रों से मिली;
तब फिर तनिक काँपी-हिली।
पर, अन्य क्षण मानो प्रकट थी धीरता!

[८९]

जो था हुआ सब कह गई,
सुत-समिति विस्मित रह गई।
बोले युधिष्ठिर तब कि "माँ, यह क्या किया?
पर-हेतु मरने के लिए,
निज सुत, बिना अकपक किये,
किस भाँति भेजेगा तुम्हारा यह हिया?

[९०]

मुझको समझ पड़ता नहीं।"
माँ ने दिया उत्तर वहीं,—
"यह हृदय ऐसा ही बना है क्या कहूँ ?
ऐसा जटिल, पूछूँ किसे,
विधि ने बनाया क्यों इसे,
अबला रहूँ मैं और हा ! सब कुछ सहूँ !

[९१]

यह दैव का अन्याय है,
पर वत्स, कौन उपाय है ?
पूछो न तुम इस हृदय की कुछ भी दशा।
रण में मरण तक के लिए,
पति - पुत्र को आगे किये,
देती विदा हैं गर्व कर हम कर्कशा।

[९२]

फिर भी हृदय फटता नहीं,
उलटा प्रमद अटता नहीं॥
पर, दूसरे के दुःख में मेरा हिया,
करुणार्द्र होता है स्वयं,
शिशु-तुल्य रोता है स्वयं;
श्री व्यास ने इसको यही शिक्षण दिया।"

[९३]

सब पाण्डु-सुत गद्गद हुए,
आनन्द से उन्मद हुए,—
"समुचित हमारी जन्मदा को है यों,
हमने परीक्षा ली वृथा।"
हँस कर पुनः बोली वृद्ध—
"बेटा, परीक्षा तो नियत थी ही नहीं।

५

[९४]

फिर होगई गम्भीर वह,
जिसमें कि हो न अधीर वह,
माना न किन्तु तथापि माँ का अश्रुजल।
दो बूँद वह कर ही रहा,
सहदेव ने तब यों कहा,—
"बलि दो मुझे माँ, जन्म मेरा हो सुफल।"

[९५]

"पुनरपि परीक्षा, हाय रे।
कैसे सहा यह जाय रे।"
उसने कहा—"बेटा, तुम्हें बलि दूँ? रहो,
दो पुत्र माद्री ने जने,
दो ही रहें मेरे बने।
बस, इस विषय में अब न तुम कुछ भी कहो।"

[९६]

तब वीर अर्जुन ने कहा,—
"माँ, तुम मुझे भेजो, अहा !
सब जानते हैं 'पार्थ' मेरा नाम है।"
पर भीम ने रोका उन्हें,
सप्रेम अवलोका उन्हें,—
"ठहरो तनिक तुम, भीम का यह काम है।

[९७]

लघु तुम, तथा गुरु आर्य हैं;
क्या ये तुम्हारे कार्य हैं ?
माँ, ठीक है बस, किन्तु तुम क्यों रो उठीं ?
समझा, समझ में आ गया,
कर्त्तव्य कृतिपन पा गया;
वात्सल्य-वश अब हाय ! विचलित हो उठीं।

[९८]

पर माँ, न तुम कुछ भय करो,
निज भीम का जय जय करो,
इन बाहुओं में बल नहीं निस्सीम क्या ?
इन युग्म के रहते हुए,
बक - मुष्टियाँ सहते हुए,
पशु तुल्य मरने को हुआ है भीम क्या ?

[९९]

बक से बहुत जन हैं मरे,
उसने लिए बहु ओसरे,
बारी उसी की जान लो, अब आगई।
बलवान कम न हिडिम्ब था,
यम का पृथुल प्रतिबिम्ब था,
पर, शत्रुता मेरी उसे भी खा गई।

[१००]

सबको यहाँ अब हर्ष हो,
मेरा नया उत्कर्ष हो;
समझो इसे हे अम्ब, तुम शुभ योग ही।
निष्फल निरख कर निज गदा,
कहता यहाँ मैं था सदा,—
'क्या भाग्य में है हाय! भिक्षा-भोग ही?'

[१०१]

खुजली मिटेगी कल जरा,
हो जायगा फिर बल हरा;
दुर्दान्त पापी दैत्य मारा जायगा।
पक्वान्न जो वक के लिए,
बलि-संग जाते हैं दिये;
माँ, स्वादु उनका भी मुझे ही आयगा!"

[१०२]

हँसती तथा रोती हुई,
सुध-बुध सभी खोती हुई,
कहने लगा कुन्ती कि—"सब जीते रहो,
मेरी तुम्हीं से आस है,
मन में यहा विश्वास है,
तुम नित नये यश का अमृत पीते रहो।

[१०३]

सब शत्रुओं को मार कर,
पितृ राज्य का उद्धार कर,
भोगो सभी सुख भोग मिलकर सर्वदा।
गुण-गण तुम्हारे गेय हों,
अनुपम चरित चिर ध्येय हों,—
दृष्टान्त हो सम्पद विपद में तुम सदा।"

[१०४]

प्रेमाश्रुओं की सृष्टि से,
दर्शन न पाकर दृष्टि से,
पाँचो सुतो को युग करों से घेर कर,
कुन्ती परम प्रमुदित हुई,
मानों उषा समुदित हुई,
सरसीरुहों पर निज कनक-कर फेर कर।

[१०५]

इसके अनन्तर किस तरह,
(हरि मत्त करि को जिस तरह)
वक-वध वृकोदर ने किया पर दिन वहाँ,—
लिखते नहीं अब हम इसे,
पढ़ना वही प्रिय हो जिसे,
कृपया क्षमा कर दे हमें वह जन यहाँ।

वन-वैभव

श्रीगणेशायनमः

वन-वैभव

पूर्वार्द्ध

[१]

अतुल वह अपना हेमागार,
जलाकर कर देने को छार,
जानकी रूपी आग अपार,
चुराने का करके कुविचार,
चला जो रावण निपट निषिद्ध,
मङ्गलाचरण करे वह सिद्ध?

[२]

"तुम्हारे भाई बेचारे,
जुए में जो सब कुछ हारे,
विपिन में दीन भाव धारे,
भटकते हैं मारे मारे।
न जानें कैसे हैं ये लोग,
यहाँ हम करते हैं सुख भोग।

[३]

खबर लें उनकी, चलो जरा,
कि वन में होगा हृदय हरा।
वहाँ है निर्मल नीर भरा,
और मृगया के योग्य धरा।"
शकुनि की सुन यों गूढ़ गिरा,
हँसा दुर्योधन हठी निरा।

[४]

"खबर की तुमने खूब कही,
उचित है मामा, हमें यही।
पिता की आज्ञा किन्तु रही,
वहाँ मृगया ही मुख्य सही!"
कर्ण ने कहा—"धन्य लक्षी,
एक ढेले में दो पक्षी!"

[५]

विकट यह तीन तिकट मिल के,
हँसा फिर खिल खिल कर खिल के,
हौसले ले ले कर दिल के,
ताड कर करके तिल तिल के,
सफल करने अभिलाष नया,
अन्ध नृप-निकट तुरन्त गया।

[६]

कहा दुर्योधन ने—"हे तात,
लगी है कुछ सिंहों की घात।
विपिन में है उनका उत्पात,
जहाँ है अपना पशु-संघात।
करेंगे हम मृगया वन में,
घोष यात्रा की है मन में।"

[७]

सुना भूपति ने "हूँ" करके,
"ठीक है" कहा आह भर के।
"हेतु हैं किन्तु वहाँ डर के,
विचारो तुम्हीं ध्यान धर के।
वहीं पाण्डव भी रहते हैं,
दुःख मन ही मन सहते हैं।

[८]

देख कर तुमको सम्मुख हाय !
क्रोध उनका न कहीं जग जाय।
रहेगा तो फिर कौन उपाय ?
न समझो तुम उनको असहाय।
शक्ति उनकी है सबको ज्ञात,
सुरों में भी है यश विख्यात।"

[९]

शकुनि ने कहा–"व्यर्थ यह सोच,
प्रबल हो वे या पूरे पोच,
कहूँगा यह मै निस्सङ्कोच,
नहीं है उनके मन में मोच।
न हो जब तक अज्ञात-निवास,
करेंगे वे न विरोधाभास।"

[१२]

मुदित थे सब यात्री मन में,
समाती स्फूर्ति न थी तन में,
नया जीवन था जन जन में,
कि होगा अब विहार वन में।
जहाँ जिस रात पड़ाव पड़ा
हुआ कौतुक-सा वहाँ खड़ा।

[१३]

शान्त वन भी तब नगर बना,
यहाँ जब शिविर समूह तना।
उठा कोलाहल घोर घना,
हुए सब खग-मृग भीत-मना।
जिधर पाण्डव थे, [illegible] —
खबर-सी [illegible]

[१६]

हाय ! वह कृष्णा कल्याणी,
शेष है बस जिसमें बाणी,
कि जो थी कभी महारानी,
स्वयं अब भरती है पानी !
किन्तु है मन में मान वही,
आन हो कि न हो, बान वही।

[१७]

सदा पति-सेवा करती है,
अतिथियों का श्रम हरती है।
भव्य भावों को भरती है,
धर्म्म अपना आचरती है।
किन्तु होकर क्षत्रियभार्य्या,
दुःख भूले क्या वह आर्य्या ?

[२०]

बाल वे मन्त्रों से अभिषिक्त,
हुए जो राजसूय में सिक्त,
हो चुके हैं रत्नों से रिक्त,
और दुःशासन-कृत अविविक्त।
परिष्कृत कैसे हो तब तक—
शत्रु जन जीवित है जब तक ?

[२१]

सती हँसती भी रोती है,
धैर्य्य धीरों के खोती है।
भींगती और भिगोती है,
बीज बदले के बोती है।
विषम वैरांकुर पतिया है,
न सींचें क्यों दृग सरिता है ?

[२२]

शत्रु-कृति पतियों से कहती,
द्रौपदी सब कुछ है सहती।
पाण्डु-कुल-वृक्षा में बहती,
पवन सी अस्थिर है रहती।
पवन वह कि जो जिलाती है,
और झौंके भी लाती है।

[२३]

वहाँ जो खग-मृग चरते हैं,
प्यार उस पर वे करते हैं।
किन्तु मन ही मन डरते हैं,
पगा में ही सिर धरते हैं।
प्यार के बदले में निर्दिष्ट,
दया ही है उन सबको इष्ट।

[२४]

वीर पाण्डव भी भ्रान्त न थे,
विपिन में बैठे श्रान्त न थे।
किन्तु केवल विक्रान्त न थे,
धीर भी थे कि अशान्त न थे।
समय की उन्हें प्रतीक्षा थी,
धर्म्म की जैसी दीक्षा थी।

[२५]

पार्थ ने तप कर मन-भाया,
विजय-वर शङ्कर से पाया।
शूर वह सुरपुर हो आया,—
वहाँ से दिव्यायुध लाया।
यत्न यों उनके जारी हैं,
विरत कब वे व्रतधारी हैं?

[७६]

वहाँ बहु ऋषि-मुनि आते हैं,
विविध व्याख्यान सुनाते हैं।
शान्ति उनसे सब पाते हैं,
सुदिन यों कटते जाते हैं।
पुरोहित हैं उनके जो धौम्य,
कराते हैं सुयज्ञ वे सौम्य।

[७७]

दिखा कर अपना वैभव-वेश,
जलाने को उनका हृदेश,
सुयोधन ने तज लज्जा-लेश,
किया वन में जिस समय प्रवेश,
युधिष्ठिर शान्त सुसयत थे,
रुचिर राजर्षि यज्ञ-रत थे।

[२८]

देख कर कौरव-दल, भयभीत
भगे जो मृग-विहङ्ग कलगीत,
जान निज शरण उन्हे सुविनीत
हुए चिन्तित वे परम पुनीत।
तभी आये कुछ वनचारी,
उन्होंने कथा कही सारी।

[२९]

युधिष्ठिर ने ली लम्बी साँस,
भीम के रोम हुए कुश-काँस।
गड़ी अर्जुन को मानो गाँस,
नकुल के नख में थी क्या फाँस?
सन्न सहदेव हुए निरुपाय,
हँसी या रोई कृष्णा हाय!

[३०]

मौन था फिर भी सभी समाज,
द्रौपदी बोली तब सव्यान—
"भाइयों की सुध लेने आज
पधारे हैं कौरव-कुल-राज।
मिलूँगी पर मैं कैसे, हाल ?—
खिंचा है चीर, खुले हैं बाल।

[३१]

करें आतिथ्य आप सब लोग,
रङ्क-राजों का हो संयोग,
हाय रे ! मन्द-भाग्य के भोग,
मरण ही है मेरा उद्योग।"
उमड़ आये फिर अश्रु असीम,
गरज कर बोल उठे फिर भीम—

[३२]

"उचित आतिथ्य करूँगा मैं,
हीनता सभी हरूँगा मैं।
काल से भी न डरूँगा मैं,
कि मारूँगा कि मरूँगा मैं।
गिरा कर सु-गुरु गदा की गाज,
चुका लूँगा सब बदला आज।

[३३]

द्रौपदी, मत हो यों बेहाल,
भीम जीवित है अरि-कुल-काल।
रवफर कर शत्रु-रुधिर से लाल
वही बाँधेगा तेरे बाल।
स्वयं हरि ने होकर अनुकूल,
दिया है तुझे अनन्त दुकूल।

[३४]

हमारा विभव हमीं को ग्राज
दिखाने आया शत्रु-समाज।
नहीं आती नीचा को लाज,
देख छैंया मैं सारे साज।
हँसें वे, मैं मुहँ तोड़ूँगा,
न जीता उनको छोड़ूँगा।"

[३५]

भीम ये या था क्रोध कठोर ?
गिरा थी उनकी या घनघोर ?
पार्थ ने धर धन्वा की डोर,
दृष्टि की धम्मराज की ओर,
कि मिल जाय उनका आदेश,
और मिट जाय मन के क्लेश।

[३६]

फेर कर तब धीरज के साथ
भाइयों की पीठों पर हाथ,
विश्व-विश्रुत गुण-गौरव-गाथ,
बोलने लगे पाण्डु-कुल-नाथ—
"शान्त हो भाई, कृष्णे, शान्त;
न आतुर हो तुम यों एकान्त।

[३७]

हुआ जो सारा विभव विनष्ट,
हुए जो हम सब राज्य-भ्रष्ट,
भोगने पड़े हमें जो कष्ट,
दोष यह है मेरा ही स्पष्ट।
किन्तु ज्यों तुमने इसे सहा,
सुनो त्यों मेरा आज कहा।

[३८]

पिता के हम प्रिय छोटे थे,
मरे जब वे, हम छोटे थे।
रुदन कर भू पर लोटे थे,
हमारे दिन जो खोटे थे।
उठाया था हमको किसने?
उसे है सौ प्रणाम जिसने।

[३९]

वही पालक बालकपन के,
पिता हैं हम दुर्योधन के।
वही रक्षक हैं जीवन के,
बड़े चाचा पाँचों जन के।
पूर्ण करके त्रुटियाँ सारी,
बना माता माँ गान्धारी।

[४०]

उन्होंने हमें सँभाला था,
पिता-माता ज्यों पाला था।
प्यार सौ पुत्रो वाला था,
तदपि हमको दे डाला था!
उन्हींका होने से सुत मात्र—
क्षमा का है दुर्योधन पात्र।

[४१]

सोच कर उनके वे उपकार
क्षम्य हैं उसके दुर्व्यवहार।
कहूँगा मैं भी किन्तु पुकार,—
न छोड़ेंगे हम निज अधिकार।
उचित समझेंगे हम जब जो
करेंगे उनके हित सब सो।

[४२]

नहीं स्वत्वों का जिसको ध्यान
फेरता है वह विधु का दान।
और करता है निज अपमान,
किन्तु हम हैं क्षत्रिय-सन्तान।
करेंगे चाहे निवना त्याग,
न छोड़ेंगे भय से निज भाग।

[४३]

अवध भी हो तो क्या परवाह ?
करेंगे हम स्वधर्म्म-निवाह।
मरें भी, पर न करेंगे आह,
स्वर्ग की खुली पड़ी है राह।
हमारा नहीं प्रजा का राज्य,
किन्तु यह नहीं धम्मतः त्याज्य।

[४४]

करें तो करलें वे उपहास,
पूर्ण हो ले अज्ञात निवास।
जायँगे तब हम उनके पास,
और फिर माँगेंगे निज न्यास,
उसे यदि देंगे वे हित मान
क्षमा पावेंगे बन्धु-समान।

[४५]

किन्तु यदि वे हठ ठानेंगे,
न्याय की बात न मानेंगे,
याद रक्खें, तो जानेंगे,
हमें रण में पहचानेंगे।
राज्य के नहीं, धर्म्म के अर्थ
उठेंगे तब ये शस्त्र समर्थ।

[४६]

शान्त हो भाई, कृष्ण, शान्त,
न आतुर हो तुम यों एकान्त।
अभागा दुर्योधन है भ्रान्त,
न हो निज सहनशीलता श्रान्त।
तुम्हें है क्रोध, मुझे है खेद,
नहीं है इसमें हिताहित भेद।

[४७]

दयामय, इसे बुद्धि-वर दो,
भाइयो, तुम भी यह कर दो—
और उसको कुछ अवसर दो,
धैर्य अपना न यहीं धर दो।
क्षमा करके हरि ने सौ पाप,
किया था चेदीश्वर पर ताप।

[५०]

भले ही कुछ भी हो परिणाम,
फलाफल से है हमें न काम—
करेंगे हम स्वकर्म निष्काम,
निफल भी देंगे वे निश्राम।
और भी शान्त रहें ये बाण,
हमारे हैं बस आप प्रमाण।

[५१]

शान्त हों आर्य्य भीम, इस बार।"
भीम तब बोले मन को मार—
"आर्य्य का है जब यही विचार
वहन करना ही होगा भार।
सहा सब इनके कहने से,
हटेंगे अब क्यों सहने से?

[५२]

आर्य्य के पीछे वह अपमान—
सहे हमने सम्मान-समान।
आज ही वहीं हमारा ध्यान,
किन्तु यह जीवन है वेजान।
करूँ तो जाकर मैं अब लोप
हिंस्र जीवों पर ही वह कोप!"

[५३]

भीम यों कह कर वचन यथार्थ,
गये आवेग-सदृश मृगयार्थ।
समझ निष्फल-सा निज पुरुषार्थ,
हुए निश्चल भी चञ्चल पार्थ।
युधिष्ठिर देकर पुनः प्रबोध,
मेटने लगे सभी का क्रोध।

उत्तरार्द्ध

[१]

इधर कौरव-दल गौरव धार,
विपिन में करने लगा विहार।
गूँजने लगी गान - गुञ्जार,
नूपुरों की नव-नव झङ्कार।
कहीं कुञ्जों में क्रीड़ा, भेंट,
कहीं जल-केलि, कहीं आखेट,

[२]

उसी वन में था एक तड़ाग,
जहाँ उड़ता था पद्म-पराग।
वहाँ का हरा-भरा भू-भाग,
आप उपजाता था अनुराग।
चौखटे में ज्यों हरे जड़ा,
धरा पर हो सुर-मुकुर पड़ा!

[३]

चाँदनी छिटकी थी उस रात,
विचरता था वासान्तिक वात।
सो रहे थे यद्यपि जलजात,
अयुत शशि थे सर में प्रतिभात।
सरस सर की निहार शोभा,
सुरों का मानस भी लोभा।

[४]

अप्सराओं को लेकर सङ्ग,
नैश निस्तब्ध भाव कर भङ्ग,
बहाता हुआ रास-रस-रङ्ग,
चित्ररथ भरे अपूर्व उमङ्ग,
चन्द्र तारों को दे व्रीड़ा,
वहाँ करता था जल क्रीड़ा।

[५]

अचानक इसी समय अनिवार
विपिन में करता हुआ विहार,
झूमता हुआ कुञ्जराकार,
साथ में लिये प्रणय-परिवार,
स्वयं भी जल-विहार के हेतु,
वहाँ पर आ पहुँचा कुरु-केतु।

[६]

उसे गन्धर्वों ने टोका,
तर्जनी दिखलाई रोका;
ज़रा-सा खाकर तब झोंका,
क्रोध से उसने अवलोका।
उठी जो उसकी भृकुटि कराल,
खिचीं सौ तलवारें तत्काल!

[७]

हुआ गन्धर्वों पर आघात,
चित्ररथ तक पहुँची यह बात—
कि 'कोई उद्धत मानव-जात
मचाता है आकर उत्पात।'
सिन्धु से उच्चैःश्रवा-समान,
हुआ सरनिर्गत वह बलवान।

[८]

क्षोभ से जलने लगा शरीर,
बिना पोंछे ही सूखा नीर।
वल्कल वस्त्र शीघ्र वह वीर,
उठा कर धनुष, चढ़ा कर तीर—
जिधर होता था रण का शोर,
चला शार्दूल-सदृश उस ओर।

[९]

अप्सराएँ पुष्करिणी-सी,
दल भय-बाधा करिणी-सी,
विकल हो हहरी हरिणी सी,
काँपती थीं सब तरिणी-सी।
हाथ से देकर उन्हें प्रबोध,
चित्ररथ चला गया सक्रोध।

[१०]

पहुँच दुर्योधन - सम्मुख शूर,
घोर नेत्रों से उसको घूर,
कूकता हो ज्यों कुपित मयूर
वचन बोला सुस्वर से क्रूर—
"कौन है तू, ओ उद्धत, धृष्ट,
यहाँ जो आया मरणाकृष्ट ?"

[११]

सुयोधन भी बोला सक्रोध—
"ज्ञात क्या तुझको नहीं अबोध,
कि करके जिसका मार्ग निरोध,
किया है तुमने आत्म-विरोध।
वही इस पृथ्वी का स्वामी
सुयोधन नृप हूँ मैं नामी ?"

[१२]

"अरे, तू ही दुर्योधन है,
दुष्ट, दाम्भिक जो दुर्जन है,
अनुज जिसका दुःशासन है,
प्रकट जिसका पामरपन है?
भाइयों को भिक्षुक करके
बना नृप उनका धन हरके।

[१३]

मानता हूँ, तू है नामी,
किन्तु कुल-काल, कुपथगामी।
आज इस पृथ्वी का स्वामी
बना फिरता है तू कामी।
पकड़ रखना तू इसका हाथ
सती होगी यह तेरे साथ।

[१४]

मूढ़, तुझ-से कितने भूपाल
हुए, है, होंगे विपुल विशाल।
किन्तु सबके पीछे है काल,
रहा इसका ऐसा ही हाल।
बहुत है यही, कहूँ क्या और
कि देगी तुझको भी यह ठौर।

[१५]

तुझे है लगा राज्य का रोग,
इष्ट है अपना ही भू-भोग;
कि भाई हैं जो पाण्डव लोग,
सह्य उनका भी नहीं सुयोग।
किन्तु है भूपर सबका भाग,
करेंगे जिसे न सुत भी त्याग।

[२६]

धर्म क्या है इतना असमर्थ
कपट जो करे प्रगति के अर्थ ?
अर्थ ही तब तो हुआ अनर्थ,
पुण्य का होना ही है व्यर्थ !
शोक में ही तब तो सुख हो,
हमें फिर क्यों दुख में दुख हो ?

[२७]

सुयोधन से उसके अनुसार
करें यदि हम भी दुर्व्यवहार,
रहा हममें भी फिर क्या सार ?
करो कुछ इसका तुम्हीं विचार ।
हमारा-उसका तो है नाम,
किन्तु है पुण्य-पाप-संग्राम ।"

[३०]

"विजित हैं बन्धु आपके सर्व,
उन्हें हैं बाँध चुके गन्धर्व,
शकुनि, कर्णादिक का भी गर्व
हो गया रण में सहसा खर्व।"
शत्रुओं का सुन यों अपकर्ष,
वृकोदर बोले शीघ्र सहर्ष—

[३१]

"शूर-मद था उनको भरपूर,
हुआ वह आज अचानक चूर।
चलो, हम सबके काँटे क्रूर
हुए ऊपर के ऊपर दूर!
लड़ें उनके पीछे हम क्यों?
करें प्रतिकूल परिश्रम क्यों?

[३४]

भीम के ऐसे भाव विलोक,
हुआ पाण्डव-पति को अति शोक।
सके वे और न मन को रोक,
और यों बोले उनको टोक—
"भीम, शरणागत का अपमान!
कहाँ है आज तुम्हारा ज्ञान?

[३५]

कौरवों ने जो अत्याचार—
किये हैं हम पर वारंवार,
करेंगे उनका हमीं विचार,
नहीं औरों पर इसका भार।
क्रूर कौरव अन्यायी हैं,
हमारे फिर भी भाई हैं।

[३८]

वत्स अर्जुन, सत्वर आओ,
और तुम उन्हे छुड़ा लाओ।
शत्रु समझो, तो भी आओ
द्विगुण जय यों उन पर पाओ।
भीम, सहदेव, नकुल सब लोग,
करो जाकर समुचित उद्योग।"

[३९]

कहा अर्जुन ने—"जो आदेश,
किन्तु सब लोग करें क्यों क्लेश?
द्रौपदी, क्या है राज्योदेश?
बांध सकती हो अब तुम केश।
आर्य्य के इस सद्भाव-समक्ष
और क्या हो सकता है लक्ष?"

[४२]

प्रेम-पूर्वक बोले तब पार्थ—
"हुआ मैं आज अतीव कृतार्थ।
यहाँ है ऐसा कौन पदार्थ,
करूँ जिससे आतिथ्य यथार्थ?
किन्तु ये भाई हैं मेरे—
आप यों जिनको हैं घेरे।"

[४३]

चित्ररथ बोला—"कैसी बात!
ज्ञात तो हैं इनके उत्पात?"
कहा अर्जुन ने—"सच है ज्ञात,
विश्व भर में हैं वे विख्यात।
किन्तु कहते हैं आर्य्य उदार—
करेंगे उनका हमीं विचार।"

[५८]

हुई रक्ताक्त आपकी देह !"
चित्ररथ बोला तब सस्नेह—
"बिजलियाँ चमकीं, बरसा मेह,
तृप्त ही हूँ मैं हे गुण-गेह।
आत्मजय तुमने पाया है,
शत्रु का शत्रु हराया है!"

[५९]

लिये तब कौरव-दल को सङ्ग—
उड़ा था जिसके मुँह का रङ्ग।
फिरे अर्जुन ज्यों मत्त मतङ्ग,
पीठ पर डुलता चला निषङ्ग।
पहुँच कर पाण्डव-राज-समीप,
प्रणत वे हुए पाण्डु-कुल-दीप।

चूमा दुर्योधन का भी भाल,
अङ्क में भर उसको तत्काल,
युधिष्ठिर ने आँसू ढाल—
"वत्स मन पाला ? कुल पाल!"
किन्तु दुर्योधन का वह मौन
बना सम्मति-सचूक कौन ?

—